



Bhram Rishi KrishanDutt Ji
Maharaj Patrika May 2013

॥ ओ३म् ॥

प्रभु से विनय

हे प्रभु ! तू मेरे हृदय को उज्ज्वल और महान बना। उस पवित्र पथ का गामी बना जिस पथ पर चलने के पश्चात् मानव की गति महानता में परिणत हो जाती है। हे प्रभु ! जो चंचल मेरी गति है वह गति ऐसे दमनवत को प्राप्त होती चली जाये, जैसे सायंकाल का सूर्य हो जाता है। वह गति मेरे लिए घातक है, मेरे जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करने वाली है। हे प्रभु ! मेरे इस जीवन में नाना प्रकार की बाधाएँ हैं, परन्तु वह जो सुपथ है उस पथ पर चलने के लिए प्रभु ! मेरे लिए कंचन एक बहुत ही बाधक बना हुआ है। वह जो कंचन है वह मेरी ममतामयी धारा को बना रहा है। जिससे प्रभु मेरा जीवन विकसित नहीं हो पाता, क्योंकि तेरे राष्ट्र में कंचन नहीं होता, तेरे राष्ट्र में प्रकाश होता है। हे प्रभु ! यह जो संसार का लुभावना जगत है जिसमें नाना प्रकार के सुन्दर रूप और कंचन मुझे ऐसे लुभाते रहते हैं, जैसे प्रभु ! प्रातःकाल में मानव अपनी शैया को त्याग देता है। हे प्रभु उसे मैं नहीं चाहता, मैं सदैव यह चाहता रहता हूँ कि मेरे हृदय से कंचन और कामिनी दोनों से मैं उदासीन हो जाऊँ। प्रभु ! जब तक मैं दोनों से उदासीन नहीं हो सकूँगा तब तक मेरा जीवन उत्तम पथ को प्राप्त नहीं होगा। मुझे स्मरण आता रहता है क्योंकि हमारे सत्संग की जो पुनीत बेला है उसमें वास्तव में हमें यही वस्तु तो प्राप्त होती रहती है। क्योंकि जब हम विचारते रहते हैं कि संसार में जो वस्तु मानव को उदासीन नहीं होने देती इस संसार में हमारा जातीय जो अभिमान है वह भी हमारे जीवन में एक महान बाधक बना हुआ है। हे प्रभु ! संसार में जब हम प्राणीमात्र में आपकी प्रतिभा को दृष्टिपात करेंगे तो हमारा जीवन और हम इस संसार से वास्तव में उदासीन बन सकते हैं। जबतक हमारा जीवन इन तीनों विचारों में भ्रमण कर रहा है, जातीय अभिमान है, कंचन अभिमान है, कामिनी अभिमान है, ये तीनों ही हमारे जीवन को नष्ट-भ्रष्ट करते चले जा रहे हैं, हे प्रभु ! मैं इसको नहीं चाहता। प्रभु मैं उस मार्ग को चाहता हूँ, जिस पथ पर जाने के पश्चात् इस मार्ग की एक उज्ज्वल धारा हमारे मानवत्व को पवित्र बनाती चली जाती है। तो भगवन् ! मैं प्रातःकाल की बेला में आपके चरणों की वंदना कर रहा हूँ, वंदना का अभिप्राय है कि मैं अपने हृदय को उज्ज्वल बना रहा हूँ। आपकी शुद्ध पवित्र अमृत संवदेना के साथ प्रभु मैं अपने हृदय को निर्मल और स्वच्छ जल से स्वच्छ बनाना चाहता हूँ।

पूज्यपाद-गुरुदेव

अनुक्रम

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	प्रभु से विनय	पूज्यपाद-गुरुदेव 1
2.	अनुक्रम	2
3.	मन और प्राण	पूज्यपाद-गुरुदेव 3-18
4.	आत्म लक्ष्य की चर्चाएँ	पूज्यपाद-गुरुदेव 19-30
5.	Destiny of the Soul	पूज्यपाद-गुरुदेव 31-35
6.	दान, सूचना, पुस्तकों की सूची आदि	36-40

आवश्यक सूचना

श्री महानन्द संस्कृत माध्यमिक विद्यालय, लाक्षागृह बरनावा (बागपत) में निम्न विषयों के अध्यापकों की नियुक्ति हेतु :-

पद का नाम	विषय	योग्यता
1. सहायक अध्यापक	संस्कृत व्याकरण	प्राच्य व्याकरण में आचार्य की उपाधि शिक्षा एवं शास्त्री (बी.एड)
2. सहायक अध्यापक	विज्ञान (गणित)	बी.एस.सी., बी.एड
3. लिपिक		बी.काम. व कम्प्यूटर का ज्ञान अनिवार्य

सम्बन्धित अभ्यर्थी दिनांक 25-5-2013 तक अपने आवेदन पत्र योग्यतानुसार प्रधानाचार्य कार्यालय में प्रेषित करें। वेतन योग्यतानुसार।

श्री महानन्द संस्कृत माध्यमिक विद्यालय

॥ ओ३म् ॥

मन और प्राण

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष कुछ मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण करते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकाँक्षा बनी रहती है कि मैं अपने उस देव को दृष्टिपात करना चाहता हूँ। वह मुझे किस स्थलों पर प्राप्त हो सकता है? परन्तु वेद का ऋषि यह कहता है कि **परमात्मा को बाह्य-जगत में दृष्टिपात करना है तो उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह इतना अनुपम है कि उसके सम्बन्ध में प्रत्येक मानव को उड़ान उड़नी चाहिए।** बाह्य जगत में दृष्टिपात करता हुआ मानव परमपिता परमात्मा के अनन्त ज्ञान और विज्ञान को अपने में नहीं पा पाता। वह बाह्य-जगत को दृष्टिपात करता हुआ नाना प्रकार के अणु और परमाणुओं में रत रहता है और यह जानता है कि इन शब्दों में ब्रह्म को दृष्टिपात करता है। कहीं मानव रूप में दृष्टिपात करने लगता है, कहीं कन्द सुगन्ध में और कहीं रस में।

ब्रह्म कैसा है?

मेरे पुत्रो ! आज विचारना यह है कि परमात्मा को नाना रूपों में मानव दृष्टिपात करता रहता है, बाह्य-जगत में नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की उड़ान उड़ता रहता है। परमात्मा में नवीनता और वृद्धपन को दृष्टिपात करता रहता है। परन्तु जब

यह विचार विनिमय होने लगता है दार्शनिकों का और विचारकों का कि वह जो ब्रह्म है वह कैसा है? और ब्रह्म को किस प्रकार जाना जाता है? वैज्ञानिकों ने यह कहा है कि हम परमाणुवाद की उड़ान उड़ने लगते हैं, उस परमात्मा के बिखरे हुए ज्ञान और विज्ञान में हम स्वतः नाना प्रकार की उड़ान उड़ना प्रारम्भ कर देते हैं। वह उड़ान हमारी अन्तरिक्ष तक चली जाती है। हम यहाँ से उड़ान उड़ते हैं पृथ्वी के गर्भ में जाने के लिए। द्वितीय उड़ान उड़ते हैं शुक्र मण्डलों के लिये, तृतीय उड़ान उड़ते हैं सूर्य लोकों के लिये और चतुर्थ उड़ान जब उड़ने लगते हैं तो हम मानव ध्रुव मण्डल में जाने के लिये तत्पर हो जाते हैं। पंचम जब उड़ान उड़ते हैं तो स्वाति नक्षत्रों में, मूल नक्षत्रों में अपनी गति बना लेते हैं। ऊर्ध्व गति में जाते हैं तो आकाश गंगा में चले जाते हैं, और ऊर्ध्व गति बनाना चाहते हैं तो नाना आकाश गंगाओं में रमण करने लगते हैं, और भी ऊर्ध्व गति बनाना चाहते हैं तो एक मण्डल से दूसरे मण्डल को सहकारिता में दृष्टिपात करने लगते हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल से गुँथा हुआ है। एक मण्डल है एक मण्डल की आकर्षण शक्ति से यह ब्रह्माण्ड गतिशील होता दृष्टिपात माना जाता है।

यदि हम और ऊर्ध्व उड़ान उड़ते हैं तो इसको योगेश्वर बन करके ही संसार को अपने अन्तरात्मा में दृष्टिपात करने लगते हैं। ध्यानावस्थित होने मात्र से ही इस संसार को संकुचित बना लेते हैं, इसका इतना आँकुचन कर लेते हैं कि सर्वत्र विस्तार वाले ब्रह्माण्ड को हम अपने मस्तिष्क में दृष्टिपात करने लगते हैं क्योंकि इन आकाश गंगाओं का लघु-मस्तिष्क होता है, लघु-मस्तिष्क में यह ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तरों वाला दृष्टिपात आने लगता है।

मुनिवरो ! जब हमारे हृदय में यह आकाँक्षा होती है कि हम परमात्मा को जानना चाहते हैं तो परमात्मा के ज्ञान और

विज्ञान के क्षेत्र में हमें जाना बहुत अनिवार्य है और जब हम इस ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में पहुँच जाते हैं तो उसके पश्चात् उस ब्रह्माण्ड को हम व्यापक रूप से दृष्टिपात करने लगते हैं। हमने इससे पूर्व वाक्यों में कहा कि **प्रकृति की पाँच प्रकार की गति मानी जाती है।** ध्रुवा, ऊर्ध्वा, व्यापकता, प्रसारण मानो जिसको हम प्रसारणवृत्त कहते हैं और मानो गति से गति करना और पञ्चम जो गति है उसको आँकुचन कहते हैं अर्थात् सूक्ष्म बनाना ही। इस प्रकृति को विचारक वैज्ञानिक दृष्टिपात करता है, अणुवाद पर चला जाता है, एक शब्द में वह अपने चित्रों का चित्रण करने लगता है। मुझे स्मरण आता रहता है एक समय सतयुग के काल में आदि ब्रह्मा के पुत्र का नाम **अथर्वा** था और अथर्वा के समीप सोमवृत्त-केतु ऋषि महाराज ब्रह्मचारी शौनक इत्यादि तीन जिज्ञासु विराजमान थे। अथर्वा एकान्त स्थली पर विराजमान हो करके वेद-मन्त्र का अध्ययन कर रहा था। वेद-मन्त्र की उड़ान उड़ रहा था और वह कह रहा था “वृतक गृहे लोकान्त चन्द्रम् विहि वृताः आकुच्यः वृति वधा, देवतम् लोकाः ब्रह्माण्ड बृहति आस्तो अप्राः गचति वृत लोका।” वेद का ऋषि इस मन्त्र का अध्ययन कर रहा था और अध्ययन करता हुआ मानो ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने जब इस प्रकार का अध्ययन किया तो उड़ान उड़नी प्रारम्भ कर दी। इतने में शौनक ऋषि ने कहा अथर्वा क्या विचार कर रहे हो? अथर्वा ने कहा कि मैं इस वेद-मन्त्र को विचार रहा हूँ। **इस वेद-मन्त्र में यह आया है कि इस संसार को आँकुचन करो।** अब मैं इस संसार को कैसे आँकुचन करूँ। क्योंकि यह तो बड़े विस्तार वाला है। सूर्य-मण्डल ही एक ऐसा मण्डल है जिसमें नाना पृथ्वी समा जाती हैं। एक मण्डल दूसरे मण्डल में समाहित होता दृष्टिपात आ रहा है। इतने विस्तार वाले अहिल्या रूप ब्रह्माण्ड को मानो इस प्रकृतिवाद का मैं कैसे आँकुचन बना सकता हूँ? कहा जाता है कि ब्रह्मचारी अथर्वा से शौनक ने कहा कि इसको आँकुचन बनाना तो बड़ा ही सहज

है। क्योंकि हमारा एक वेद मन्त्र यह भी तो कह रहा है “ब्रह्मणाः वृत्तेः वाहियाम् जगतयाम् प्रहे वृताः आन्तरिक जगतयाम् देवाः काल्पना वृत्ति अस्तो” वेद मन्त्र यह भी तो कह रहा है कि जब तुम बाह्य-जगत में और आन्तरिक-जगत दोनों की मिलान मिलाना जानते हो, दोनों को मिलाना चाहते हो तो यह कैसे नहीं मिला सकते। इस वेद मन्त्र और उस वेद मन्त्र का दोनों का समन्वय किया जाए।

मेरे पुत्रो ! दोनों समन्वय करने लगे तो एक वाक्य आया कि वास्तव में इतने ऊँचे और इतने महान् ब्रह्माण्ड को, लोक लोकान्तरों वाले जगत को जब हमारा यह वाक्यवाद, प्रसारणवाद समाप्त होने लगता है इसका विज्ञान तो उसके पश्चात् हम इस सँसार को आँकुचन कर लेते हैं। एक स्थली में मानो इसे समेट लेते हैं। और समेट कौन लेता है? वेद का ऋषि क्या कहता है? मुझे यह वाक्य स्मरण आता है जब वेद का ऋषि मग्न हो करके अपनी यज्ञशाला में इस वेद मन्त्र का उच्चारण करता है “मनो वाचाः प्राणों वृत्ति वृद्धों कहा अभ्यम् माप मान लोके वहे कृति।” वेद का ऋषि मग्न हो करके यह वाक्य कह रहा है कि हे मानव ! तू इस सँसार को आँकुचन क्यों नहीं कर सकता? जब जितना भी सँसार तुम्हें दृष्टिपात आता है यह मन और प्राण का ही दृष्टिपात आ रहा है। जितना भी यह लोक लोकान्तरवाद है, एक-दूसरे से पृथक् होता दृष्टिपात आता है, एक दूसरा एक दूसरे में समाहित होता भी दृष्टिपात हो रहा है, यह लोक है, यह मण्डल सूर्य है, यह बृहस्पति है, यह आरुणी है, यह मूल नक्षत्र है, यह स्वाति नक्षत्र है, यह कृत्तिका नक्षत्र है, यह मूल नक्षत्र है, यह स्वाति नक्षत्र है, यह कृत्तिका नक्षत्र है, यह रोहणीकेतु नक्षत्र है, यह पुष्पाँजली वृत्त केतु नक्षत्र है जब एक दूसरा मण्डल एक दूसरे से शनिलोकों के आँगन को प्राप्त हो रहा है वह लोक एक दूसरे में गुँथा हुआ एक दूसरे की

आकर्षण शक्ति से स्थिर हो रहा है।

उस आकर्षण शक्ति का मूल कारण कौन है? यह भी तो हमें विचारना है। **इन आकर्षण शक्तियों का जो मूल कारण है वह सत् है।** ऋत् और सत् है। ऋत् और सत् में यह सँसार समाहित हो रहा है। ऋत् ही सत् से गुँथा हुआ है। **ऋत् और सत् को हमारे यहाँ प्राणत्व कहा है। “ऋत् नाम मन का है और सत् नाम प्राण का है।”** वेद का ऋषि कहता है कि यह जो मन है यह प्रकृति की सबसे सूक्ष्म धारा है जिसको आदि ऋषियों ने महत्त्व भी कहा है इसके आँगन में प्राण है इसको “क्रेत वृत् तत्वे” कहा है।

मुनिवरो ! जब हम इन दोनों पर चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं तो वेद मन्त्र इस वाक्य को कहता है कि इस सँसार को आँकुचन क्यों नहीं कर सकते? जब हमारे इस मानव शरीर में आन्तरिक-जगत में और बाह्य दोनों जगत में मन और प्राण अपना कार्य कर रहा है। **मन और प्राण कैसे कार्य करता है?** एक मानव अपने कुटुम्ब का परिचय देता हुआ कहता है कि सर्व कुटुम्ब एक पँक्ति में विराजमान हैं। कह रहा है कि यह मेरी माता है, यह पिता है, यह पुत्र है मानो जिस प्रकार की आकृति है, जिस प्रकार का प्राणी आता रहेगा उसी प्रकार के मानव चित्त पटल पर आते रहते हैं। उसी प्रकार की धाराएँ प्रारम्भ हो जाती हैं। यह कौन है? यह मन ही तो है जो नाना प्रकार की प्रवृत्तियों का विभाजन कर रहा है। रूप रूपान्तरों का विभाजन कर रहा है। लोक लोकान्तरों को विभक्त कर रहा है। उनमें गति करने वाली कौन सी वस्तु है जो विभक्त होती दृष्टिपात होती है। बेटा ! वही वेद का ऋषि कहता है “प्राणत्व वृत्ते चेताः।” वही तो प्राण है जो विभक्त होता दृष्टिपात हो रहा है, जो नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। नाना लोकों में जो गति हो रही है वह उस प्राण की हो रही है। इसीलिये मैं प्राण के ऊपर अपनी विशेष चर्चा देने नहीं

आया हूँ। विचार विनिमय केवल यह कि यहाँ सँसार में दो ही वस्तु हैं दोनों वस्तुओं को हमें विचारना है।

मानव के शरीर में जब मन और प्राण एक सूत्र में आ जाते हैं, एक ही आँगन में प्रवेश कर जाते हैं वही हमारे यहाँ “मनः कृति वृद्धा।” वही तो मानव की साधना बन करके रहती है। **मानव की साधना क्या है?** मानव किस वस्तु की साधना करना चाहता है? वह मन और प्राण को एक सूत्र में लाना चाहता है। यदि वह इन दोनों को एक सूत्र में नहीं ला सकता तो उसकी आत्म-साधना पूर्ण नहीं होगी। इसलिये **आत्म-साधना** के लिये मानव परम्परा से क्रियाशील रहा है। मानव उसी से अनुशासित होता रहता है और अनुशासन ही मानव का जीवन है। आज मैं तुम्हें मन और प्राण की चर्चा देने आया हूँ।

मन और प्राण के समन्वय से उपलब्धियाँ

मुनिवरो ! ब्रह्मचारी अथर्वा का यह विचार रहा है अपने आँगन में विराजमान हो करके कि इस सँसार को हम कैसे आँकुचन कर सकते हैं। इतने व्यापक ब्रह्माण्ड को अपने में समाहित कर सकते हैं। “मन और प्राण जब एक सूत्र में आ जाते हैं, आत्मा की प्रतिभा, आत्म-चेतना इसी में कार्य करने लगती है और वह अपने में अनुभव करने लगता है कि सर्व ब्रह्माण्ड मेरे में समाहित हो रहा है।” (1) मैंने तुम्हें कई कालों में वर्णन करते हुए कहा था कि जब मन और प्राण मूलाधार में जाते हैं तो मूलाधार को विजय करने के पश्चात् वह पृथ्वी मण्डल को विजय कर लेता है। (2) जब नाभि चक्र में जाता है मन और प्राण साधना के द्वारा तो उस समय मध्य के आँगन को पार्थिव तत्व जितने हैं उनको अपने में विजय कर लेता है (3) जब वही मन और प्राण आत्मा के सहित जब हृदय चक्र में जाते हैं तो परमात्मा का यह जितना भी जगत है यह सब हृदय बन करके मानव में गति करने लगता है। (4)

जब यही मन और प्राण आत्मा के सहित विराजमान हो करके कँठ चक्रों में रमण करने लगता है तो जितने भी वायु प्रधान वाले लोक हैं उन पर वह विजय कर जाता है। (5) जब वह त्रिवेणी के स्थान में मन और प्राण और आत्मा इनके ऊपर विश्राम करके जाता है तो वहाँ दो कृतिका होती हैं उन कृतिकाओं में जब गति प्रारम्भ हो जाती है तो जितने अग्नेय मण्डल वाले लोक हैं वह मानव उन पर विजय कर जाता है। (6) जब यह आत्मा प्राण और मन ब्रह्मरन्ध्र में जाता है तो ब्रह्मरन्ध्र की जो पँखड़ियाँ हैं वे गति करने लगती हैं। जब उनमें गति आ जाती है उसे हमारे यहाँ “ब्रह्मरन्ध्र अस्वत्”, कहते हैं, जब उनमें गति आ जाती है तो जितनी उनमें गति तीव्र आती है तो जितने भी सँसार में लोक लोकान्तर हैं, उनमें जो नाना प्रकार की इडा, पिंगला, सुषुम्णा अर्थात् गँगा, यमुना, सरस्वती कह दीजिए, इन तीनों नाड़ियों का मिलान उस ब्रह्मरन्ध्र से होता है और ब्रह्मरन्ध्र के साथ में उन नाड़ियों का मेल अथवा चक्राणी बन करके रहती है तो अन्तरिक्ष तथा जितना भी ब्रह्माण्ड है, जितना भी यह लोक लोकान्तर वाद है उन नाड़ियों में से सहस्त्रों-सहस्त्रों क्या करोड़ों-करोड़ों वाहक नाड़ियों का ऊर्ध्व मुखरविन्द हो करके उन लोकों को वह योगी अपने में दृष्टिपात करने लगता है। जब वह दृष्टिपात करने लगता है मानो देखो, वह जो लोक लोकान्तरवाद है उसको वह अपने में धारण करने लगता है। यह सँसार अपने में दृष्टिपात आने लगता है, ब्राह्म-जगत को आन्तरिक-जगत में ले लेता है और ले करके लघु मस्तिष्क, वृत्तकेतु मस्तिष्क मानो सोमभृत मस्तिष्क तीनों मस्तिष्कों का ऊर्ध्व मुख हो करके ये जो लोक लोकान्तर हैं इनको सहज ही जानने लगता है। जिस विज्ञान में जाने के पश्चात् भौतिक विज्ञान-वेत्ता नाना अणु और परमाणु में गति करता हुआ नाना स्थूल यन्त्रों का निर्माण करता हुआ वह अपनी ऊर्ध्व गति को बनाता हुआ लोक लोकान्तरों में क्या चन्द्र लोकों में गति करने लगता है, मँगल लोकों

में यानों से गति करने लगता है परन्तु एक योगी नाना मण्डलों को अपने ही शरीरों में धारण करता हुआ उनको प्रत्यक्ष दृष्टिपात करने लगता है और वह कहता है कि हे वैज्ञानिकों ! जहाँ तुम्हारा ये भौतिकवाद अणुवाद पूर्ण-अर्थात् समाप्त होता रहता है वहाँ से आध्यात्मिकवाद का प्रारम्भ हुआ करता है। वहाँ से मानो आध्यात्मिकवाद की एक कृतिका प्रारम्भ होती है।

प्राण की महत्ता

आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा है? अथर्वा और शौनक दोनों यह विचार रहे हैं कि हम आत्म-वेत्ता बनना चाहते हैं। आत्मा को वही जान सकता है जो मानव अपने में ही इस सँसार को दृष्टिपात करता हुआ इस सँसार को आँकुचन बना लेता है। मुझे स्मरण आता रहता है, मैंने कल सूक्ष्म सी प्राण की चर्चाएँ तुम्हारे समीप नियुक्त कीं। महाराजा हनुमान की सूक्ष्म सी चर्चाएँ कीं। मेरे प्यारे ! यह तो तुम्हें प्रतीत है कि महाराजा हनुमान पवन पुत्र कहलाते थे। वे अन्जना के पुत्र थे। महाराजा “मही वृत केतु” राजा की कन्या का नाम अन्जना था। अन्जना के पुत्र जो हनुमान हुए पवन पुत्र कहलाते थे। महाराजा महीन्द्र राजा के राज कुमार पवन कहलाते थे मुझे वह काल स्मरण है जब वह बाल्यकाल से माता अन्जना के गर्भ में क्रीड़ा करता रहता था। बाल्यकाल में वह विचारता रहता। बाल्यकाल में कि माता यह सूर्य क्या पदार्थ है? यह सूर्य क्या है? तो माता उसे यह शिक्षा देती थी कि पुत्र ! यह जो सूर्य है यह प्रकाशक है, यह प्रकाश का देने वाला है। नाना प्रकार की किरणें आ करके हमारे को प्रकाशित करती रहती हैं। माता जब यह विचार देती रहती तो एक समय बाल्यकाल में इस बालक ने यह कहा कि माता ! मेरा हृदय तो ऐसा कह रहा है कि सूर्य की आभा को मैं अपने

में निगलना चाहता हूँ। अपने में धारण करना चाहता हूँ। उन्होंने कहा कि पुत्र ! वह भी समय आएगा। देखो माता के स्थल में होने वाला बालक हनुमान वह सारी सूर्य विद्या का विशेषज्ञ बना। माता की अनुपम शिक्षा थी। सूर्य के विज्ञान को जानने वाला, सूर्य की जितनी विद्या है, प्रकाश है उसे वह स्वयं अपने में निगलता रहता था। जब वह ब्रह्मचारी 48 वर्ष का हुआ तो महाराजा सुग्रीव की कन्या से उसका सँस्कार हुआ महाराजा सुग्रीव और बालि दोनों विधाता (भ्राता) थे। उनकी कन्या से जो सँस्कार हुआ तो उस सँस्कार के पश्चात् एक पुत्र को जन्म दे करके उस कन्या का निधन हो गया। निधन हो जाने के पश्चात् माता अन्जना ने पुनः कहा कि पुत्र तुम सँस्कार कराओ। उन्होंने कहा कि मातेश्वरी ! अब मैं परमात्मा के विज्ञान में जानना चाहता हूँ, अब मैं इस प्रकृतिवाद को जानना चाहता हूँ, मुझे सँस्कार की इच्छा नहीं। क्योंकि पितर याग का मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया है। पितर याग क्या है? मेरे पितरों ने जो याग किया था मुझे उत्पन्न किया। मैंने एक पुत्र को जन्म दिया मेरी पत्नी समाप्त हो गई। उसका कार्य पूर्ण हो गया।

जब यह आभा में नाना वैज्ञानिक विराजमान हैं, उन्होंने अपने शरीर के प्राणों को अध्ययन करना प्रारम्भ किया। एक समय वह कागभुषण्ड जी के द्वार पर पहुँचे और कागभुषण्ड जी से यह कहा कि महाराज मुझे शिक्षा दीजिए। कागभुषण्ड जी इस विद्या को जानते थे, वह अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ान भी जानते थे, पृथ्वी में, समुद्र के आँगन में भी अपनी गति को जानते थे, कागभुषण्ड जी जो इतने वैज्ञानिक थे, इतने योगेश्वर थे, मुझे जब उनका जीवन स्मरण आता है तो हृदय गद्गद् हो जाता है। मैं यह कहा करता हूँ कि कागभुषण्ड जैसा बनना चाहिये जो अन्तरिक्ष में गति करने वाला हो। (1) उदान प्राण और (2) नाग प्राण दोनों का मिलान करता हुआ मानों (3) कृकल और (4) देवदत्त और (5) उदान प्राण को मिलान कर वह अपने शरीर को अन्तरिक्ष में

उड़ान उड़ने वाला हो। इस प्रकार का कागभुषण्ड था। वही क्रिया हनुमान जी ने ऋषि के द्वार पर प्राप्त की। उस विद्या को पान करने वाले हनुमान जी ने अपने शरीर को ऊर्ध्व में भी बना लेते थे और आँकुचन कर लेते थे। जैसे प्रकृतिवाद को एक योगी सर्वत्र ब्रह्माण्ड को अपने अन्तर आत्मा में दृष्टिपात करने लगता है, अपने मन और प्राण को धारण करके संसार में मन और प्राण की रचना को दृष्टिपात करता है, इसी प्रकार एक योगी, एक साधक अपने शरीर को इतना सूक्ष्म बना लेता है। अपनी अस्थियों को प्राण को अर्पित करके, मन को अर्पित करके, अपने शरीर को आँकुचन बना करके वह सुरसा जैसे मुखारबिन्दु में परणित हो जाना और उससे बाहर आ जाना यह सब इन प्राणों की ही विशेषता है, बेटा ! आँकुचन क्रिया है जिसको जान करके मानव को आश्चर्य होता है। क्योंकि उसका अध्ययन न होने के कारण मानव नाना प्रकार की टिप्पणियाँ कर सकता है।

मुनिवरो ! मैं प्राण की एक और चर्चा प्रकट करूँगा। हनुमान जी तो थे ही, मानो देखो, यही विद्या बालि के पुत्र अँगद पर पहुँची। अँगद अपने शरीर को विशाल बनाना जानता था। बेटा ! तुम्हें स्मरण होगा जब राम ने यह कहा था कि हे अँगद ! रावण के द्वारा जाओ। कुछ सुलह हो जाए। उनके और हमारे विचारों में एकता आ जाए। संस्कृति का प्रसार हो जाए। जाओ तुम उनको शिक्षा दो। तो जब वे रावण की राज सभा में पहुँचे। तो वहाँ नाना वैज्ञानिक भी विराजमान थे। राजा रावण विराजमान थे। उनके सर्व पुत्र विराजमान थे, उस राज सभा में अँगद का आवागमन हुआ तो रावण ने कहा आओ तुम्हारा किस प्रकार से आगमन हुआ? उन्होंने कहा कि प्रभु ! मैं इसीलिये आया हूँ कि मैं यह चाहता हूँ कि राम में और तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए। तुम्हारे यहाँ संस्कृति के प्रसार में अभाव आ गया है। अब मैं उस अभाव को शान्त करने के

लिये आया हूँ। क्योंकि चरित्र की स्थापना करना यह राष्ट्र का कर्तव्य होता। तुम्हारे राष्ट्र में चरित्र की हीनता हो गई है। तुम्हारा राष्ट्र उत्तम प्रतीत नहीं हो रहा है। इसीलिये तुम्हारे दोनों के विचारों में एकता आ जाए, संस्कृति का प्रसार हो जाए। वैदिकता आ जाए, यौगिकता आ जाए, महत्ता आ जाए तो तुम्हारा जो यह एक दूसरे से विवाद है रक्त बहाने की प्रवृत्ति समाप्त हो सकती है। इसको समाप्त कराने के लिए मैं तुम्हारी राज सभा में आया हूँ। तब रावण ने कहा कि यह तो तुम्हारा विचार यथार्थ है। परन्तु मेरे यहाँ क्या सूक्ष्मता है? उन्होंने कहा कि तुम्हारे राष्ट्र में चरित्र की सूक्ष्मता है। राजा के राष्ट्र में जब चरित्र नहीं होता तो संस्कृति का विनाश हो जाता है। इसलिए संस्कृति का विनाश नहीं होना चाहिए। संस्कृति का उत्थान करना है। क्योंकि संस्कृति यही कहती है कि मानव के आचार व्यवहार को सुन्दर बनाया जाए, महत्ता में लाया जाए।

एक दूसरे की पुत्री की सुरक्षा होनी चाहिए। यह राजा के राष्ट्र को पद्धति कहलाती है। उन्होंने जब यह वाक्य कहा तो रावण ने कहा कि क्या मेरे राष्ट्र में विज्ञान नहीं है। उस समय अँगद ने कहा कि हे रावण ! तुम्हारे राष्ट्र में विज्ञान है। परन्तु विज्ञान का क्या बनता है? मानो एक मँगल की यात्रा कर रहा है। परन्तु मँगल की यात्रा से क्या बनेगा? जब तुम्हारे राष्ट्र में अग्नि काण्ड हो रहे हैं। हे रावण ! तुम सूर्य मण्डल की यात्रा कर रहे हो, उस सूर्य की यात्रा होने से क्या बनेगा? जब तुम्हारे राष्ट्र में एक कन्या का जीवन सुरक्षित नहीं है। तुम्हारे राष्ट्र का बनेगा क्या? जब रावण से उन्होंने यह वाक्य प्रकट किया तो उन्होंने कहा कि यह तुम क्या वाक्य उच्चारण कर रहे हो? तुम अपने पिता की परम्परा को शान्त कर गए हो। उन्होंने कहा कि कदापि नहीं। मैं इसलिये आया हूँ कि तुम्हारे राष्ट्र का और अयोध्या दोनों का समन्वय हो जाए। रावण मौन हो गया। मौन हो करके उनके पुत्र

नरायन्तक ने कहा कि हे पिता ! क्या आप मौन हो गए हो? इसके मूल को हम नहीं जान सके हैं। उन्होंने कहा कि मैं इसलिए मौन हो गया हूँ कि यह क्या उच्चारण कर रहा है। उन्होंने कहा कि भगवन् ! इसको विचारा जाए। तो विचारते-विचारते यह आया कि यह दूत है यह क्या कहता है। दूत ने पुनः कहा कि यदि तुम भगवान् राम से अपने विचारों का समन्वय कर लोगे तो राम माता सीता को लेकर के चले जाएँगे। जब उन्होंने ऐसा कहा तो रावण ने कहा कि यह क्या उच्चारण कर रहा है? उन्होंने कहा कि मैं धृष्ट नहीं हूँ। उन्होंने कहा कि यही धृष्टता है सँसार में कि दूसरे की कन्या को अपने में हरण करके लाना एक महान् धृष्टता है तुम्हारी। तुम्हें इस धृष्टता का ज्ञान नहीं हुआ है कि तुम पर स्त्री गामी बन गये हो और जो राजा पर स्त्री-गामी होता है उस राजा के राष्ट्र में अग्नि के काण्ड हो जाते हैं।

जब उन्होंने यह कहा तो राजा रावण मौन हो गया और कहा कि यह कटु उच्चारण कर रहा है। अँगद ने कहा कि मैं तुम्हें प्राण की एक क्रिया निश्चित कर रहा हूँ यदि चरित्र की अवसरता है तो मेरा जो यह पग है इस पग को यदि तुम एक क्षण भर भी अपने स्थल से दूर कर दोगे तो उस समय मैं माता सीता को त्याग करके राम को अयोध्या में ले जाऊँगा। वही उनकी प्राण की क्रिया थी। सर्व प्राण को वह एक पग में ले जाए और (1) उदान प्राण, (2) व्यान और (3) अपान दोनों का मिलान करके (4) नाग की पुट लगा करके तीनों प्राणों का मिलान हो करके प्राण भी उसमें पुष्ट हो गया तो वह शरीर विशाल बन गया। पग विशाल बन गया। उस प्राण के बल को तो राज सभा में कोई ऐसा बलिष्ठ नहीं था जो उनके पग को एक क्षण भी अपनी स्थली से दूर कर सके। तो यह प्राण की विशेषता है। आज हमें प्राण की महत्ता को जानना चाहिए। यह प्राण कितना शक्तिशाली है। इसलिये हमारे यहाँ पुरातन काल में प्राण की चिकित्सा होती

रही है।

जहाँ ऋषि मुनियों ने यह विचारा कि इस औषधि में भी प्राण हैं, यहाँ “चिकित्सम् ब्रह्मे”, प्रकृतिकता में भी प्राण हैं। इसीलिये **प्राण चिकित्सा से उत्तम सँसार में कोई भी चिकित्सा नहीं कहलाती है।** प्रत्येक मानव को यह ज्ञान होना चाहिये कि हमारा जो प्राणत्व है वह कितना विशाल होना चाहिये। अँगद का पग जब एक क्षण समय भी दूरी नहीं हुआ तो रावण उस समय स्वतः चला। परन्तु रावण के आते ही उन्होंने कहा कि यह अधिराज है, अधिराज से पगों का उठवाना सुन्दर नहीं है। उन्होंने अपने पग को अपनी स्थली पर नियुक्त कर लिया और कहा रावण ! तुम्हें मेरे चरणों को स्पर्श करना है तो तुम राम के चरणों को स्पर्श करो। तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है। तुम्हारे विचारों का समन्वय हो जाएगा। रावण मौन हो गया और अपनी स्थली पर विराजमान हो गया। महाराज नरायन्तक ने अपने पिता से यह कहा कि हे पिता ! जिस राजा की सेना में प्राण के ऐसे ऐसे विशेषज्ञ हों ऐसी सेना को हम विजय नहीं कर सकेंगे। उनके पुत्र ने जब यह वाक्य कहा। क्योंकि रावण के राष्ट्र में न सूर्य उदय होता था और न अस्त होता था, इतना व्यापक राष्ट्र था उनका। एक अयोध्या का ही राष्ट्र शेष रह रहा था। (1) महाराष्ट्र (2) अयोध्या और (3) जनकपुरी मिथिला को छोड़ कर शेष सँसार पर रावण परिवार का राज्य था। नरायन्तक ने यह कहा कि महाराज ! हम तो प्राणों को केवल विज्ञान में ही लाना जानते हैं। परन्तु ये शिराओं में लाना जानते हैं, जो शिराओं में प्राणों को लाना जानता है हे पितर ! उस सेना को कोई भी विजय नहीं कर सकता सँसार में। जो प्राणों को जानता है, जो प्राणों की विशेषता को जानता है, अपने शरीर के अंगों में लाना जानता है, बाह्य-जगत और आन्तरिक-जगत में जानता है उस ब्रह्मचारी को

मृत्यु विजय नहीं कर सकती। मेरे प्यारे ! उस ब्रह्मचारी को मृत्यु विजय नहीं कर सकती क्योंकि शरीर से प्राण ही तो जाता है। प्राण ही तो खलने वाला है, प्राण ही है जो माता को पुत्र के वियोग में विकल बना रहा है, एक मानव मानो दुःखी हो रहा है जो प्राण के स्वरूप को जानता है, अर्थात् प्राण को अपान में जानता है, अपान को व्यान में जानता है, व्यान को समान में जानता है और समान को नाग और कृकल में जानता है, नाग और कृकल को देवदत्त और धनञ्जय में जानता है, यह जो प्राणों का एक दूसरे में समन्वय करने वाला जो ज्ञान और विज्ञान है यह उदान के समीप जाता है और उदान यह कहता है माता से पुत्र कहता है कि माता ! अब मैं अपने लोक को जा रहा हूँ। (1) चित्त, (2) आत्मा और (3) उदान तीनों मिलकर जब इस शरीर को त्यागते हैं तो माता प्रसन्न होती है। क्योंकि जो माता उन प्राणों को जानती है तो माता को रुलाने वाला कोई नहीं होता। माता को कौन रुलाता है, बेटा ! अज्ञान रुलाता है। जिसको प्राणों का ज्ञान नहीं होता, आत्मा का ज्ञान नहीं होता, वही तो माता विरही बन करके सँताप करती है, मानो रुदन कर रही है। पिता उसी के लिए रुदन करता है और जब प्राणों को एक दूसरे प्राण को समावेश करना जानता है, ज्ञान का प्रकाश हो रहा है, मन इसमें भ्रमण करता दृष्टिपात हो रहा है तो उस मानव की, उस समाज की मृत्यु नहीं होती। वह मृत्यु से पार हो जाता है।

मृत्यु को कौन विजय करता है? वेद कहता है ब्रह्मचरिश्चामि, हे ब्रह्मचारी ! तू मृत्यु को विजय कर लेता है। मृत्यु को विजय कौन करता है? जो बेटा ! प्राणों को जानता है, जो प्राण को एक दूसरे में मिलान को जानता है। वह मानव ब्रह्मचारी कहलाता है। उसके ब्रह्मचर्य की गति ध्रुव, नीची न रह करके ऊर्ध्व बन जाती है। ब्रह्मरन्ध्र में चली जाती है। ब्रह्म से

उसका मिलान हो जाता है। जब चेतना ही चेतना दृष्टिपात होती है तो शरीर को यह जानता है कि यह तो परमाणुवाद का शरीर है। यह परमाणुवाद पृथक-पृथक हो जाएगा एक समय। तो न उनके वियोग का उसे शोक होता है और न उसके संगठन की विशेषता प्रतीत होती है। जब उसके बिछुड़ने का कोई वियोग होगा, रुदन नहीं होगा, विरह नहीं बनेगा। उसके आने की भी कोई प्रसन्नता नहीं होगी। **इसी का नाम बेटा ! जीवन है।** उस मानव की मृत्यु नहीं होती और न वह माता रुदन करती है। उसे यह ज्ञान होता है कि मेरा पुत्र क्या है? यह तो परमाणुओं का मिलान हुआ, विश्वकर्मा ने इसका निर्माण किया है। प्राण विभक्त हो गये हैं। जो विश्वभान बन करके रहते थे, मन इसमें कार्य कर रहा है। इस प्रकार का ज्ञान और विज्ञान मानव के हृदय मस्तिष्क में समाहित हो जाता है। तो वह मानव अपने मन को ध्रुव (नीचा) नहीं बनाता व प्रकाश में ले जाता है। जहाँ प्रकाश में ले जाता है वहाँ अन्धकार नहीं होता, अज्ञान नहीं होता और जहाँ अन्धकार अज्ञान नहीं होता वहाँ मृत्यु का भय भी नहीं होता। मृत्यु उससे दूर हो जाती है, विरह समाप्त हो जाता है।

प्राण शक्ति

आज का वेद का ऋषि क्या कहता है? महाराजा अथर्वा ने बहुत ऊँचे शब्द उच्चारण किए। महाराजा अथर्वा ने यही कहा था कि इस सँसार को आँकुचन करके अपने में समाप्ति करो, अपने में दृष्टिपात करने लगे। ऋषि मुनि साधना करते हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय आसन पर विराजमान थे और विराजमान हो करके बोले कि मैं मिथ्या उच्चारण करना नहीं चाहता हूँ। मैं अपनी वाणी में बल चाहता हूँ। प्राण शक्ति चाहता हूँ। **मुझे स्मरण है मेरे पितर ने 184 वर्ष तक कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण नहीं किया।** 184 वर्ष तक कोई वाक्य मिथ्या उच्चारण न करें उस मानव की वाणी में इतनी आग्नेय शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इतनी प्राण शक्ति आ जाती है कि वह जो उच्चारण करता है वही हो जाता है। वह ऐसा है कि वह मानव के

अतःकरण को दृष्टिपात करके यह जान लेता है कि इसके जीवन में कैसी-कैसी घटनाएँ होने वाली हैं। उन्हीं घटनाओं के साथ में गठित होने वाला जीवन उसकी वाणी में उच्चारण होने लगता है। उस वाणी में इतनी महत्ता आ जाती है। मुझे स्मरण है जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे तो एक पँक्ति में शिष्यगण रहते थे, एक पँक्ति में मृगराज रहते, एक पँक्ति में और जलचर रहते, सर्पराज भी रहते, जब सभा विसर्जन होती मानो उनके चरणों को स्पर्श करते तो जैसे हम करते वैसे ही मृगराज और सिंहराज भी उनके चरणों को स्पर्श किया करते थे। मैंने एक समय अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि प्रभु ! यह क्या कारण है जो हिंसक प्राणी भी आपके चरणों को छू रहे हैं। सर्पराज भी आपकी गाथा के लिये लालायित है। तब आचार्य ने कहा कि हे पुत्रों ! प्रत्येक प्राणी अपने पिता की प्रशंसा चाहता है। वह जो परमात्मा है वह सबका महान् पिता है और उसका जो वेदों का ज्ञान है, वेद की जो ऋचा है ज्ञान और विज्ञान से गुँथी हुई उसको कौन नहीं चाहता। क्या सर्प यह नहीं चाहता कि मेरे पिता की प्रशंसा न हो, क्या सिंहराज नहीं चाहता। परन्तु मानव की वाणी में इतनी प्राण शक्ति होनी चाहिए जिससे विषचर अमृत बन करके उसके शरीर में प्रवेश कर जायें। सिंहराज की हिंसक प्रवृत्ति उसका चित्त मिलान कर जाए। मेरे पुत्रों ! वह जो चित्त मिलान की बात है वही हिंसक प्राणी “अहिंसा परमो धर्मो” बन करके चरणों को छूता है, वही सर्पराज विषधर बन करके भी वेद वाणी का अमृतपान करके वह भी ऋषि के चरणों को छूने लगता है। तो यह जो प्राण शक्ति है यह इतनी विशाल है, यह शब्द में रहती है, जितना भी शब्दमय प्राणी रहता है उतना ही मानव के द्वारा महत्ता रहती है, उतना ही एक दूसरे के चित्त में प्रवेश करके उसके चित्त को जान सकता है।

यह है बेटा ! आज का वाक्य। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हम परमपिता की आराधना करते हुए उस सत् में अपने जीवन को बनाते हुए, सत् ही सत् दृष्टिपात होने लगता है। वह सत् ही है जो मानव के हृदयों में समाहित हो

॥ ओ३म् ॥

आत्म लक्ष्य की चर्चाएँ

जीते रहो !

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही ऋषि-मुनियों की बहुत ऊर्ध्व उड़ान रही है। आज मैं तुम्हें कुछ उड़ान उड़ाने के लिए अवश्य जाऊँगा। हमारा जो मानवीय जीवन है यह परमपिता परमात्मा की आभा से रचा हुआ है। उसकी जो विज्ञानमय धारा है, वह मानव के जीवन से ओत-प्रोत है। जब हम यह विचारने लगते हैं कि परमपिता परमात्मा की जो आभा है उसका कोई भी मानव दिग्दर्शन करना चाहता है अथवा उसकी बलवती इच्छा बन गई है कि आज हम परमपिता परमात्मा की आभा को दृष्टिपात करना चाहते हैं तो मानव को बाह्य जगत् को त्याग करके आन्तरिक-जगत् में जाना बहुत अनिवार्य है।

यह सँसार परम्परा से ऊर्ध्व उड़ान को उड़ता चला आया है। इसकी उड़ान प्रत्येक विद्या पर रही है और प्रत्येक मानव अपने-अपने जैसा उसके हृदय में अवशेष होते हैं अथवा अँकुर होते हैं, उसी के आधार पर उसका कर्म प्रारम्भ हो जाता है। आज मैं तुम्हें उस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जिस क्षेत्र में प्रत्येक मानव अपनी आत्मा के सम्बन्ध में विचार विनिमय करते रहे हैं। मेरे प्यारे महानन्द जी ने इससे पूर्व काल में अपने विचार व्यक्त करते हुए (क्या) कहा था कि यह सँसार कहाँ है? यह ऐसा क्यों बन गया है? इनके हृदय में एक वेदना रहती है और वह वेदना ऐसी जिससे समाज को ऊर्ध्व बनाया जाए और समाज में एक महान् क्रान्ति आए। आत्मवेत्ता बनने की

क्रान्ति आ जाए। तो यह सँसार ऊर्ध्वगति वाला बन जाता है। यदि वह भी न आ पाये तो वैदिक ऋषि ने बहुत ऊँची उड़ान उड़ते हुए कहा है कि सँसार में **प्रत्येक मानव का जो उद्देश्य है वह केवल एक ही लक्ष्य रहा है कि हम परमपिता परमात्मा को और अपने मानवीय जीवन से उसका मिलान करना चाहते हैं।** मानव ने द्वितीय मार्ग को अपनाया, उस मार्ग को त्याग करके, उसमें द्वितीय मार्ग का कोई लक्ष्य मानव का नहीं है। द्वितीय मार्ग में चला जा रहा है तो उसे कोई अन्तिम लक्ष्य प्राप्त नहीं होता। इसीलिए वैदिक ऋषियों ने कहा है कि **जिस मार्ग को मानव अपनाना चाहता है उसका कोई लक्ष्य होना चाहिए।** जब सात्विक उद्देश्य मानव बनाता है और अग्रणी बनता है तो उसके उद्देश्य में एक आभा ओत-प्रोत रहती है। वेद का ऋषि कहता है कि उस आभा को अवश्य जानना चाहिए। उस आभा को जान करके मानव अपने जीवन को एक महान् और पवित्र बनाना चाहता है तो इसके जीवन की आभा में एक मानवता की एक कृति उत्पन्न हो जाती है।

मन की उड़ान

आज मैं तुम्हें उस मार्ग पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ आत्मवेत्ता अपने लक्ष्य की चर्चाएँ करते हैं। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है जब एक समय महर्षि दालभ्य मुनि महाराज के आश्रम में महर्षि गदगद महाराज का आगमन हुआ। महर्षि गदगद मुनि महाराज और महर्षि दालभ्य दोनों की विवेचना प्रारम्भ होने लगी। इसमें महर्षि प्रव्हाण, महर्षि शिलभ और महर्षि रेवक मुनि महाराज आदि विराजमान थे। जब विवेचना प्रारम्भ होने लगी तो उस विवेचना का मन्तव्य था कि इस **मानव के चित्त में इस (किस) प्रकार के शरीर आवास माने जाते हैं।** तो महात्मा गदगद मुनि महाराज और दालभ्य मुनि महाराज दोनों का विचार विमर्श होने लगा। उन्होंने कहा कि इस मानव के शरीर में आत्मा के कितने शरीर आवास माने जाते हैं? तब ऋषि कहता है “आत्मा विरेह कृता असचत्म्, विरेणी असचताम् देवश्चता तीनों धाम त्री कृता असुतो”

वेद के ऋषि ने वर्णन करते हुए कहा कि आत्मा इस शरीर में भास रहा है। परन्तु यह मनस्तत्व प्रकृति का एक अनुपम वृक्ष उत्पन्न करता है। उस वृक्ष को बांधना चाहिये। वह ऐसा अनुपम वृक्ष है जिस वृक्ष के लिए यह मन सँसार का एक वृक्ष उत्पन्न करता है। यह जो हमारे शरीर में भासने वाला अथवा विभाजन करने वाला इस सँसार का जो मनस्तत्व माना जाता है उस मनस्तत्व में एक नवीन से नवीन मानव के जीवन में वृक्ष उत्पन्न कर लेता है। कैसा सुन्दर उनके रूपों से विराजमान रहता है। यह मानव जो स्वप्न अवस्था को प्राप्त होता है उस समय यह मन जैसे अँकुर होता है एक वृक्ष उत्पन्न करता है। मानव के शरीर में नस नाड़ियाँ नहीं होतीं परन्तु उस स्वप्न अवस्था में विरह (वियोग) होता है, स्वप्न अवस्था में नस-नाड़ियाँ नहीं होतीं। परन्तु मानव एक ऐसा विशाल नस-नाड़ियों का समूह बना लेता है जिसको बनाता हुआ अपने में यह अनुभव करता है कि मैं क्या रचना रच रहा हूँ। इसी रचना को ले करके जब इस सँसार की रचना कर लेता है अँकुरों के आधार पर और कैसी रचना रचता है? स्वप्न अवस्था में नदियाँ नहीं होतीं, कोई भी गृह नहीं होता परन्तु अँकुर रूपों से अवशेष मानव के चित्त में विराजमान रहते हैं। उन्हीं चित्त के आधार पर आत्मा के प्रकाश में क्योंकि आत्मा चेतनावादी है उस चेतना में इस सँसार की रचना कर लेता है। कैसी सुन्दर रचना करता है? नदियों का निर्माण कर लेता है, पत्नियों के गृह में पति नहीं होते परन्तु पति-पत्नी के निर्माण हो जाते हैं। मानव के शरीर में स्वप्न अवस्था में पत्नियाँ नहीं होतीं परन्तु निर्माण कर लेता है, मन ऐसा विचित्र है।

मेरे प्यारे ! यही मन है जब जागरूक अवस्था में यह विराजमान होता है मानो सँसार का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार के रसों का विभाजन कर रहा है। इस माता वसुन्धरा के गर्भ में यही मन तो विराजमान है जो नाना प्रकार के रसों का आदान-प्रदान कर रहा है। कहीं कसैले का, कहीं मधु का आदान-प्रदान। इनका विभाजन करने

वाला एक ही स्रोत चलता है। वह जो मनस्तत्व है यह सर्वत्र रसों का विभाजन करने वाला है। वह 'विश्वभान-मन' बन करके इस सँसार को विभाजनवाद की क्रिया में परणित कर रहा है। यह जो ब्रह्माण्ड है, नाना प्रकार के जो लोक-लोकान्तरों में विभक्त होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। ये जो नाना प्रकार की पृथ्वी है जो सूर्य की परिक्रमा कर रही है। मानो सूर्य के अन्तर्गत नाना मण्डल गति कर रहे हैं। एक दूसरे मण्डल की परिक्रमा हो रही है। एक दूसरा परमाणु में गति कर रहा है, वह विभाजन करने वाला कौन है? मेरे प्यारे ! इस मानव के शरीर में मन है जो कुटुम्ब का भी निर्णय देता है और इसी प्रकार की तरंगें मस्तिष्क में ओत-प्रोत हो जाती हैं। एक पिता अपनी पुत्री का परिचय दे रहा है परन्तु परिचय देते हुए मानव के हृदय में करुणा है, स्नेह है। पत्नी का निर्णय दे रहा है वहाँ और प्रकार का स्नेह माना जाता है। जब पिता का परिचय देता है तो वहाँ और प्रकार की तरंगों का जन्म हो जाता है। माता का परिचय देता है तो वहाँ ममतामयी हृदय में एक तरंगें उत्पन्न हो जाती हैं, वहाँ प्रकृति और ही प्रकार की हो जाती है। जब पुत्र का निर्णय देता है तो भिन्न प्रकार की तरंगें हैं। तो इस मन को नापना चाहिए जो शरीरों में विभाजन कर रहा है। मानो सर्वत्र ब्रह्माण्ड का विभाजन कर रहा है।

मेरे प्यारे ! आज हमें विचारना चाहिए कि हम प्रभु के राष्ट्र में आए हैं, प्रभु के जगत् में यह कैसी सुन्दर रचना है? इस रचना के ऊपर प्रत्येक मानव आश्चर्य चकित होता रहता है। परन्तु विचार विनिमय यह करना है जिस समय मन इस सँसार का विभाजन कर रहा है, नाना प्रकार की वनस्पतियों में रस प्रदान कर रहा है और उसी प्रकार का रस दे रहा है जिस प्रकार का उसमें अँकुर विराजमान है। इस प्रकार का वह रसास्वादन हो रहा है, उसी प्रकार का वह विभाजनवाद है, उसी प्रकार का रस आदान-प्रदान किया जा रहा है। उस मन को हमें जानना

चाहिए। यह मन ऐसा विचित्र है कि जब यह ज्ञान और विवेक में जाता है तो उसे यह सँसार न होने के तुल्य प्रतीत होता है। जब यह विडम्बना में इतना भयभीत होने लगता है, विवेचना मय बन जाता है, इस मानव के शरीर में जितने पापों के अवशेष हो सकते हैं वह मानव के मन से उत्पन्न हो रहे हैं।

मेरे प्यारे ! मुझे बहुत पुरातन काल में इस मन की अवस्था को दृष्टिपात करने का सौभाग्य भी प्राप्त रहा है। यह मन ऐसा विचित्र है, इसमें वायु की ऐसी तरंगें भरण कर जाती हैं कि जहाँ उसे इन वायु की तरंगों वाला वातावरण प्राप्त होता है। वहाँ इस मन की प्रतिक्रियायें होने लगती हैं और यह मन वहीं ओत-प्रोत होने लगता है। वहीं इसको पुकारने लगता है और जब तक इस वायु के क्षेत्र में यह मन नहीं आता मानो इतना विभाजन हो जाता है। इसके मन के साथ में, आत्मा की बलिष्ठता से इतना विभक्त हो जाता है, इतना दूर चला जाता है कि तरंगें उसकी तरंगित नहीं हो पातीं तब तक द्वितीय क्षेत्र में उसके मन की विभिन्न कृतियाँ प्राप्त नहीं होतीं। वह शरीर से रुग्ण बना रहता है। यहाँ वेद का ऋषि कहता है "मनसचत प्रभे वृत्ताः" हे मन तू कितना विचित्र है। आज मन की अवस्था को जाना जाए कि यह कितना विचित्र है। आज हमें इस मन के अवशेषों में जाना चाहिए, जहाँ विवेक उत्पन्न होता है। परन्तु विवेक में रह करके मानव के अन्तःकरण में जो इन्द्रियों से इस मन का सम्बन्ध है क्योंकि यह इन्द्रियों का सारथी बना हुआ है। यह मन आभा से मुक्त होता हुआ 'अब्रेह' दृष्टिपात होने लगता है। तो मेरे प्यारे ! यह मन ऐसा विचित्र है कि इसी अवशेषों के वातावरण में जा करके इसकी आभा वहीं मिलान करने लगती है। क्योंकि इन्द्रियों से इसका सम्बन्ध रहता है। जहाँ ज्ञानेन्द्रियाँ-कर्मेन्द्रियाँ विराजमान हैं इन्हें स्थिर किये रहता है यह मन ही है। परन्तु यह बुद्धि इस शरीर का सारथी बना हुआ है और बुद्धि के द्वारा मन को स्थिर किया जाता है और 'आत्मा अब्रेह', उस मनस्तत्व में आत्मा के प्रकाश में बुद्धि विराजमान है और विराजमान हो करके

यात्रा कर रहा है। वह जो यात्रा हो रही है वह मनस्तत्व और बुद्धि के आधार पर हो रही है। इसी प्रकार आज हमें विचार लेना चाहिए कि वह जो मन है वह कितना विचित्र है। मन ही में संसार विस्तार को प्राप्त होता है। संस्कार होते हैं पति-पत्नियों के परन्तु आगे जो संसार क्षेत्र में प्रबलता उत्पन्न होती है, वह मन आत्मा के प्रकाश में विभाजन, मानो देखो मन आत्मा का प्रकाश ले करके इस संसार को विभक्त कर रहा है। नाना रूपों में, रज रूपों में क्या, वीर्यत्व में क्या इनका विभाजन कर रहा है। उनको ग्रहण कर लेता है वायु अवशेषों में क्या मनस्तत्व की सहायता ले करके।

आज मैं इस वाक्य को गम्भीर बनाना नहीं चाहता हूँ। **इस मन को जानने के लिए मानव को बहुत तपस्या की आवश्यकता है।** कहीं-कहीं मानव ऐसे अवशेषों में चला जाता है, एक मन से ही इतना प्रभाव हो जाता है कि द्वितीय प्राणी के मन से उसकी मृत्यु के अवशेष उत्पन्न हो जाते हैं। आज विचारना चाहिए कि इस मन को प्राण से विभक्त न होने दें। हम आत्मा से इतना विभक्त न होने दें जिससे हमारा यह जो पञ्च महाभौतिक शरीर है इससे इन्द्रियों में नाना प्रकार के अवशेष पापाचार की उत्पत्ति होती है, मन इतना विभक्त हो जाये कि मानव का शरीर सदैव इस मन के साथ रुग्ण न रह करके इस मन को जान करके कि मन के अवशेष कहाँ जाते हैं। **मन की आभा को जानने के लिए मानव को सदैव तपस्या की आवश्यकता रहती है।** मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि एक मानव शरीर की इच्छा को प्राप्त करके मन, आत्मा इतनी बलवती हो जाती है इस प्रकृति को जानने के लिए, आत्मा की पिपासा जब जागरूक हो जाती है परमात्मा को जानने के लिए। ऐसे ही भौतिकवाद में इतनी पिपासा परमाणुवाद की जागरूक हो जाती है कि यह मन आत्मा के प्रकाश में सदैव परमाणुओं को ही खोजता रहता है, परमाणुओं को जानता रहता है। मानो उसकी कितनी प्रबल इच्छा बन चुकी है कि उस इच्छा के आधार पर नाना प्रकार के परमाणुओं को ले करके इतना भौतिकवाद में रमण किया जाता

है कि उसकी उड़ान इस पृथ्वी से ले करके ऊर्ध्वगति को चली जाती है कि सूर्य मण्डलों में क्या, स्वाति नक्षत्रों तक चली जाती हैं। जहाँ सहस्रों सूर्य प्रकाश देते हों उस क्षेत्र में चले जाते हैं। वहाँ जा करके इसी प्रकृति से अपने प्रकाश से ही यह प्रकाशमान होता रहता है, शरीर की इच्छा नहीं रह पाती। यह मन ऐसा विचित्र है आज इसको जानने के लिए उत्कट इच्छा होनी चाहिए। **हम इस मन को जानें। यह मन कैसा मृतक सा बना हुआ है।** पापाचरणों पे आ करके जब पाप अधिक एकत्रित हो जाते हैं उसी काल में यह मन ऐसे भयंकर अँकुर इस प्रकृति में से लाता है जिससे उसके पापी अवशेष मन के द्वारा उसके अन्तःकरण में छा जाते हैं। अन्तःकरण पर छा करके ऐसे अवशेष अँकुर उत्पन्न होते हैं जिससे मानव शरीर को ही त्याग देता है। और भी नाना प्रकार के अँकुरों की उत्पत्ति होती रहती है। मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दिया करता हूँ।

विचार विनिमय यह कि महर्षि पतंजलि ने क्या, आदि ऋषियों ने यह कहा है कि यदि तुम इस मन को जानना चाहते हो तो विभक्त होने वाली जो प्रक्रिया उससे इसका मिलान करना प्रारम्भ कर दो। क्योंकि “मन और प्राण का दोनों को एकाग्र करने वाला प्राणी ही संसार में योगी बनता है।” जितनी भी साधना है सब इनके अन्तर्गत ही हुआ करती है। “विभक्त होने वाली और विभाजन करने वाली दोनों शक्तियों को एक चित्त में पिरोने का प्रयास करो।” बेटा ! जब दोनों एक में पिरोई जाती हैं तो योगी इनके ऊपर विश्राम करता है और विश्राम करता हुआ जो आत्मा के प्रकाश में कार्य कर रहे थे, आत्मा उनके ऊपर शयन कर जाता है और शयन करता हुआ आदि ऋषियों ने यह कहा है कि चित्त के क्षेत्र में रमण करता हुआ मानव के ब्रह्मरन्ध्र में संचित कर देता है और संचित करने पर यह संसार इसके लिए एक सहज बन जाता है।

इस मानव के शरीर में, एक स्थूल रूप में यह मन और आत्मा सर्वत्र वृक्ष बनाने वाला एक मन विराजमान रहता है। वह इन्द्रियों से

ही सँसार का वृक्ष बनाता है और वृक्ष बना करके उस वृक्ष को किसी में लय कर देता है। लय करने का अर्थ मेरे प्यारे ! देखो इस शरीर को त्याग कर यह आत्मा जाता है। यह प्रकृति के मूल पञ्चतन्मात्राएँ और ज्ञानेन्द्रियों की तरंगें मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा पञ्चप्राण सर्वत्र सूक्ष्म शरीर के साथ इस स्थूल शरीर को त्याग करके जाता है। वह जो स्थूल शरीर बना हुआ है इसमें प्रकृति की गाथा गा रहा है, प्रकृति का हमें निर्णय करा रहा है कि मैं यह प्रकृति हूँ जो इस शरीर में छाई हुई हूँ, शरीर में मेरा वास रहता है। इसी प्रकार 'अब्रेह' जब यह सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करता है तो वह चित्त नाम की जो स्थली है इसमें करोड़ों जन्मों के सँस्कार अँकुर रूपों से विराजमान रहते हैं, वह सूक्ष्म शरीर के साथ गायन करता है।

दो प्रकार के सिद्धान्त

हमारे यहाँ दो प्रकार के सिद्धान्त माने जाते हैं एक सिद्धान्त तो इस सूक्ष्म शरीर में यह माना जाता है कि ज्योंही इस शरीर रूप को त्यागा, त्योंही द्वितीय शरीर आत्मा को प्राप्त हो जाता है। एक शरीर को त्यागा है दूसरा शरीर उसके लिए नियुक्त है। वायु में कुछ गति करता हुआ माता के गर्भस्थल में प्रवेश कर जाता है और प्रवेश करके माता का गर्भाशय बलवत् होने लगता है। एक सिद्धान्त तो यह माना जाता है। द्वितीय सिद्धान्त यह माना जाता है कि कुछ अवशेष ऐसे हैं जो आत्मा अन्तरिक्ष में कुछ दिवस के लिए गति करता है और वह गति करता हुआ माताओं के शरीरों में प्रवेश करता है उसे पुनः शरीर प्राप्त हो जाता है। तृतीय गति यह है कि कुछ आत्मा ऐसी होती हैं जिनका सूक्ष्म और कारण शरीर दोनों के मध्य एक अवस्था होती है मानो देखो यह कारण में प्रवेश होने जा रहा है और सूक्ष्म से इसका उपराम हो गया है। यह आत्मा पितृयान में रमण करने लगता है **उसको पितृयान कहते हैं** परन्तु आत्मा कैसी होती हैं? उन आत्माओं के कैसे लक्षण हैं? वे जो आत्माएँ पितृयान में रमण कर गई हैं वे देव आत्माएँ कहलाती हैं। वे देव

आत्माएँ ऐसी होती हैं जो समय-समय पर शरीरों को प्राप्त हो करके इस वैदिकता का क्या किसी सत् मार्ग का अनुसरण ले करके इस सँसार से चली जाती हैं। वह पितृयान कहलाता है, वे **पितृ आत्मा** कहलाती हैं, वे पितर कहलाती हैं।

तो मेरे प्यारे ! वे आत्माएँ जो शरीर में न रह करके अन्तरिक्ष में कुछ गति कर रही हैं परन्तु इन आत्माओं की अवधि होती है कि इतने समय तक अन्तरिक्ष में गति करने के पश्चात् हम शरीरों को प्राप्त कर सकते हैं, माता को श्रेष्ठ स्वीकार करके माता के इस शरीर में भी प्रवेश कर सकते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि वह आत्मा जो प्राण में प्रविष्ट कर जाती है और परमात्मा को प्राप्त होने वाली है वह आत्मा सँसार में जीवन मुक्त कहलाती है। उन आत्माओं को यह भान हो जाता है, वह आत्मा इस प्रकृतिवाद के परमाणुओं को अच्छी प्रकार जानती है। क्योंकि यह प्रकृति सत् है और आत्मा सत् और चित् है और परमात्मा सत्-चित्-आनन्द कहलाया गया है। आत्मा सदैव आनन्द के पिपासु में रमण करता रहता है और आनन्द उसे प्राप्त होता है। उस आनन्द के प्राप्त करने के लिए आत्मा को "अवशेषम् विरेह चित्तां निगरहो अस्वितम् विरेह कृतो अस्ताः सिद्धिभानम् विरेह क्री अस्तो," वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि वह जो आत्मा है जो इस प्रकृति के अवशेषों को, परमाणुओं को जानती हैं और जान करके इस स्थूल शरीर को भी प्राप्त कर सकते हैं और सूक्ष्म को भी प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि वह परमाणुवादों से शरीर का निर्माण होता है और सँकल्प मात्र से उन परमाणुओं से अपने उन शरीरों का निर्माण कर लेते हैं और शरीरों को प्राप्त होते रहते हैं।

आत्मा और मन

मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा करने नहीं आया। यह तो विशाल आभा है। इस विशाल आभा में मैं इतना रमण करना नहीं चाहता हूँ। विचार विनिमय केवल यह कि आत्मा को जानने के लिए

सदैव तत्पर हो जाओ। सँसार में पितर-यान और पितर-लोकों को जाना जाए। पितर लोक क्या हैं? मैंने पुरातन काल में भी इन वाक्यों का निर्णय किया था, आज मैं इस क्षेत्र के विस्तार में जाना नहीं चाहता हूँ। हम इस आत्मा को और मन को जानने का प्रयास करें। ये मन के ही बन्धन कहलाये जाते हैं। जब सूक्ष्म शरीर होता है वहाँ भी आत्मा का चक्र चलता है क्योंकि वहाँ प्रकृति के अवशेष द्वारा हैं, (समक्ष हैं) सत्ता द्वारा है, यहीं प्रकृति के आवेश एक मण्डल सा बनाए रहते हैं। इसके पश्चात् कारण में भी यह मन साथ रहता है। “परन्तु जब ये मोक्ष में जाते हैं तो केवल मन का आवेश इससे विच्छेद हो करके कारण और कार्य रह करके मानो ज्ञान और प्रयत्न की आभा आत्मा के साथ में रह करके मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।”, “मन और प्राण दोनों को एकसूत्र में लाने का नाम हमारे यहाँ मोक्ष माना गया है।” उसे मोक्ष की गति कहा गया है। परन्तु आज मैं इस मोक्ष के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार विनिमय केवल यह है कि हम इस मन को जानें कि यह कितना विशाल है। यह मन ही है जो एक-दूसरे से आभायित हो जाता है अथवा प्रभावित हो जाता है। हम उन आवरणों में, उन कृतियों में जाने का प्रयास करें जिन कृतियों में जाने के पश्चात् माता अपने मन के द्वारा अपने बालक को सुशोभित बना देती है। वही माता है जो भय के अवशेष ले करके बालक को भयभीत बना देती है। **यह मन ही है जो प्रत्येक वस्तु को आत्मा के प्रकाश में ग्रहण करता है।**

मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहा है। माता मदालसा जो अपने पुत्र को लोरियाँ दे रही है और तीन शब्दों को प्रतिपादित करती है। यह आत्मा मानो अखण्ड है, **शुद्धोसि, बुद्धोसि** का विवेचन चल रहा है माता का और माता कह रही है हे बालक ! तू बुद्धिमान है, किसी काल में भी अबुद्धि नहीं है, तू शुद्ध है, किसी भी काल में तू अपवित्र नहीं होता, तू अखण्ड रहने वाला है, किसी काल में भी तेरा हास नहीं होता, किसी भी काल में तू मृत्यु को प्राप्त नहीं होता। परन्तु ‘आत्म ब्रह्मे कृताः’ इस प्रकार की जब आभा होती है तो मेरे प्यारे !

देखो माँ अपने बालक को ऊर्ध्वगति की शिक्षा दे रही है। ऊर्ध्वगति में ले जाने के लिए वह प्रयास करती चली जा रही है।

आज हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस मनुष्यत्व को जानने के प्रयास करें। यह मन है जो तुम्हें नाना रूपों में दृष्टिपात आ रहा है। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की आभा में तुम्हें दृष्टिपात आ रहा है। निर्णय कराने वाला यह आत्मा है परन्तु मन को जानके मनन करते हुए दृष्टिपात करो। अज्ञानता से दृष्टिपात करोगे तो तुम्हारे पाप कर्म ही मानो नाना रूपों में दृष्टिपात आने से वे तुम्हारे मृत्यु का मूल कारण बन जाते हैं मानो तुम्हारे शरीरों को रुग्ण कर देते हैं। कल मुझे समय मिलेगा तो मैं अश्विनी कुमार की चर्चा करूँगा। आयुर्वेद के ऊपर आज मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। हमें इस मन को जानना चाहिए। मन की आभा को ले करके जब हम अग्रणी बनते हैं और मन को जानने का प्रयास करते हैं। एकान्त स्थान में विराजमान हो करके इस मन के ऊपर विचारा जाए। मन स्वयं विचारता है। शरीर का वैद्यराज बन जाता है।

कल मैं आयुर्वेद के ऊपर कुछ विचार प्रकट करूँगा। आज का विचार यह है कि हम इस मनस्तत्व को और प्राणत्व दोनों को एक ‘ओ३म्’ रूपी सूत्र में पिरोने का, चेतना में पिरोने का प्रयास करें। माता मदालसा अपने पुत्रों से यही कहा करती थीं कि हे बालक ! आ और तू सँसार में ओत-प्रोत होकर के एक ‘ओ३म्’ रूपी धागे में तू अपने को पिरो। **माता के आदेशों का पालन करने वाले बालक ब्रह्मवेत्ता बने।** पाँच-पाँच वर्ष की आयु में मन की व्यापकता से, मन के आवेशों से बालक ब्रह्मवेत्ता बन गए। आत्मा के स्वरूप को जानने वाले बन गए पाँच वर्ष की आयु में। माँ तू अपने मन की आभा से अपने ज्ञान के द्वारा अपने पुत्रों को ज्ञान में परणित करा सकती है। ज्ञान की आभा जब मनस्तत्व के द्वारा आती है तो यह मनस्तत्व विचित्र बन करके मानव के शरीरों में प्रवाह से कार्य करता है। परन्तु जब अज्ञान आता है तो अपने आनन्द को जो शरीर में प्राप्त होता है उसको द्वितीय जगह दृष्टिपात कर

रहा है। जब हम अपनी वृत्ति के अवशेषों को द्वितीय स्थली पर दृष्टिपात करते हैं तो देखो वह मन के कारण क्योंकि हमने मन को इतना आवरण वाला बना लिया कि हम आन्तरिक सुख को जगत् में दृष्टिपात कर रहे हैं। वह हमारे मन की जो तृष्णा है उसे स्थिर करना चाहिए। हमें जितना आनन्द आन्तरिक जगत् में आता है इतना मानो ऋषि-मुनियों ने लोक-लोकान्तरों को जानने के पश्चात्, ब्रह्माण्ड को जानने के पश्चात् अन्त में उन्होंने यह कहा कि **आत्मा के क्षेत्र में चले जाओ। परमात्मा के क्षेत्र में चलो। वहाँ तुम्हें शान्ति प्राप्त होगी।** शान्ति की स्थापना के लिए ऋषि-मुनि भौतिकवाद को त्याग करके उसका ज्ञान करके, वेद को दृष्टिपात करके जब यह आत्मा के क्षेत्र में आते हैं, परमात्मा के क्षेत्र में जाने का प्रयास करते हैं। आत्मा का चिन्तन करना, दार्शनिक विचारों में प्रवेश करना अनिवार्य है।

यह मन सर्वत्र इसी प्रकार हमें जगत् पर आधारित रहता है। हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए इस मनस्तत्व को जानते हुए इस सँसार सागर से पार हो जायें। हम इस मन को प्राण सहित आत्मा से दूर न करें। इतना प्रकृतिवाद में न ले जाएँ, जिससे हमारे पाप ही हमारी मृत्यु का कारण इस मन में प्रवेश करके बनें। यह मन और प्राण शरीर को त्याग करके सूक्ष्म शरीर को धारण करें। हम दर्शनों को विचारते हुए अपनी बुद्धि से परमात्मा के क्षेत्र में पहुँचते हुए ऊर्ध्वगति में जाने का प्रयास करें। ऊर्ध्वगति में जाने का प्रयास करके परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए हम देव की आभा का गुणगान गाते हुए सँसार सागर से पार होना चाहते हैं। यह है बेटा ! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ मैं कल प्रकट करूँगा। कल मैं महर्षि अश्विनी कुमारों और दधीचि के मनस्तत्व की कुछ चर्चा करूँगा इस सम्बन्ध में। क्योंकि अश्विनी कुमारों ने एक सौ एक वर्ष तक आयुर्वेद का बहुत सुन्दर अध्ययन किया। आयु का जो वेद बना वह मन के ऊपर बना है। इसके ऊपर विचार विनिमय होगा। अब शेष चर्चाएँ मैं कल प्रकट करूँगा।

आज का वेद का ऋषि क्या कह रहा था कि हम इस मन और प्राण को जानने का प्रयास करें। योग के द्वारा लोक-लोकान्तरों की उड़ान उड़ें और उड़ान उड़ते हुए इस गान को हम अपने हृदय में दृष्टिपात करें। इसी को हम जानते हुए इस सँसार सागर से पार होने का प्रयास करें। यह है बेटा ! आज का वाक्य। आज का वाक्य क्या कह रहा है कि हम अनुसन्धान करें। प्रत्येक वस्तु को मनस्तत्व की आभा में दृष्टिपात करें। यह है आज का वाक्य। अब समय मिलेगा तो शेष चर्चाएँ हम कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पाठ होगा।

धन्य हो.....

अच्छा भगवन्।

दिनांक : 15 नवम्बर 1974

निवास स्थान : श्री नन्दकिशोर,
काशीपुर

Destiny of the Soul

Now, there is another aspect of the matter. The human body consists of nine apertures. These are the two eyes, the two noses, the two ears, the mouth, the organ of generation and the anus. There is also a tenth aperture called Brahmastrandha, but this is for the Yogis only. Those souls which pass out of the body, through the apertures of the organ of generation and the anus take their birth again in the bodies of worms residing in the faeces and urine, those souls which pass out through the aperture of the mouth take their birth in the bodies of poisonous creatures such as serpents, those which pass out through the apertures of the nose take their birth as human beings, those which pass out through the ears take birth as creatures flying in the air those which pass out through the eyes take birth as animals of water and those which pass out through Brahmastrandha take birth as human beings of high order possessing the Sattwagunas. It has been stated above that the souls passing out through the nose take birth in the form of human beings, but these souls also are divided into two categories viz. Those passing out through the right aperture of the nose (Suryaswara) and those passing out through the left aperture (Chandraswara). Now the latter of them i.e. those passing out through the left nose take birth as persons possessing the quality of Tamasgunas and the former i.e., those passing out through the right nose take birth as persons possessing either the Sattwagunas, or the Rajasgunas, or both. And O Sages ! as I have stated above the souls which pass out through the Brahmastrandha are those which enjoy the company of liberated souls in the ether, and are themselves approaching liberation. Such souls take birth with the purpose of raising others, elevating the nation, and thus

performing some noble and high deeds for the uplift of the society. These are the teachings of Mother Gargi which I have stated today.

The subject matter of my discourse today is what is the state of the soul after death and before rebirth? I have tried to explain these matters before you, but this is a very intricate philosophical subject and can be fully grasped only by a deep study of the Vedas. Sages! What is the purpose of my talk today on this serious subject related to the soul? The purpose of my talk is that man should have the knowledge of his duties. What he should do and what he should not? I remember a fable in this connection.

Once it so happened that the sage Narad, while roaming on the earth, saw a large number of persons going to Ganga to take a dip therein. He asked them "Where are all of you going ?" They replied, "Sir, we are going to take a bath in the Ganga."

"But for what purpose, ?"

"Sir, we are doing so for the purpose of leaving all our sins in the Ganga."

Now Narad thought that Ganga must be a great sinner because she collects in herself the sins of all the persons. So he went to Ganga and spoke to her, "O Ganga! You must be a great sinner. You gather together in yourself the sins of all the persons," Ganga replied, "O Sir, how can I be a sinner? I simply carry away all the sins of the people and offer them to the Ocean," Then Narad took leave of Ganga and approached the Ocean and spoke to him, "O Sir, I want to say something to you. I was just travelling on the land of the mortals when I saw a large crowd going to take a bath in the Ganga. I asked them where were they all going? They

replied that they all were going to take a bath in the Ganga and leave off all their sins therein. I then approached Ganga and spoke to her that she was a great sinner because she was gathering in herself all the sins of the people. But Ganga replied that she carried all the sins to the Ocean. ? And so I want to tell you that you are accumulating in yourself a large mass of sins.” The Ocean replied, O Narad ! What a simple fellow you are ! Where do I accumulate all the sins? I simply pass on all the sins to the clouds.” Narad then approached the clouds and said to them. “O Clouds, you are great sinners. The people leave off their sins in the Ganga, Ganga carries them to the ocean and the ocean passes on those sins to you. Thus you are the store-house of all sins.” The clouds replied, “O Narad ! we too are not the sinners. We pour down with the rains all the sins on the people. Thus the sins reach wherefrom they started.

“The purpose of reproducing this fable is that the sins committed by a person must fall on him. They can never be washed away. The fruits of actions performed by a person must be borne by him. They cannot be shared by anyone else in the world. So, O Sages ! If you will perform the actions necessary to acquire knowledge of the Self, only then you will be able to know the true nature of the Supreme. Hence you must perform only high and noble actions so that you may be able to rule over Nature and you must not act in such a way that Nature may rule over you. Never allow yourself to be subjugated by the low instincts of Nature. and always try to subdue them and attain the Supreme.

The subject matter of today’s discourse was to think over the family members of the soul which consist of the five organs of perception, the five organs of action,

the five life-winds, the mind and the intellect. When the soul roams in the ether it is enclosed in a body consisting of the above mentioned seventeen elements in their subtle forms. Besides the above mentioned subtle body consisting of the said seventeen elements the soul has also a causal body which consists of knowledge and perseverance only. When the mind, intellect and all other elements retire, only the two innate qualities of the soul-knowledge and perseverance remain with it.

Mahanand “Then O Sir ! Is the mind not existing from eternity?” Who feels pleasure and pain.

“O Son ! The existence of the mind depends upon the existence of action. As long as action exists it has to be recorded within and hence there lies the necessity of mind. As soon as the necessity of recording disappears the existence of mind also remains no more. Mind is needed only for so long as the soul is bound with the cycle of transmigration. As soon as the soul is liberated from that cycle its relation with the mind terminates, and it enjoys eternal bliss.”

Cont.....

Pujyapad Gurudev

Yogic Wisdom of the Ancient Rishies.

Parvachan Dated 27th September, 1964

दान

वैदिक अनुसन्धान समिति के प्रकाशन के कार्य के लिए याज्ञिक एवं श्रद्धालु

महानुभाओं ने अपना निम्न सात्त्विक सहयोग प्रदान किया है-

1. श्री राहुल शर्मा, बंगलौर	500 रुपये
2. श्री यशपाल राठी, ग्राम सैतपुर, मु.	500 रुपये
3. श्रीमती उर्मिला देवी, ग्राम दाहा	500 रुपये
4. श्री सत्यपाल आर्य व श्री टीकाराम जी, ग्राम दाहा	101 रुपये
5. श्री विजयपाल सिंह, मेरठ	201 रुपये
6. कु. ओशन, कु. पल्लवी, इन्द्री, हरियाणा	400 रुपये
7. श्री बी.के. त्यागी, मेरठ	200 रुपये
8. श्री भगीरथ शर्मा, ग्राम दाहा	100 रुपये
9. इन्द्रजीत, अलीगढ़	100 रुपये
10. श्री राजपाल वानप्रस्थी, भामरी	100 रुपये
11. चौहान सहाब, रुढ़की	51 रुपये
12. श्रीमति सविता पत्नी श्री रामदेव त्यागी	250 रुपये
13. श्रीमति रेनू तुली, लाजपत नगर, नई दिल्ली	1101 रुपये
14. श्री वृजपाल, बरनावा	51 रुपये
15. श्री अनिल कुमार खतौली	100 रुपये
16. श्री नवीन, मेरठ	500 रुपये
17. श्री राजेश कुमार	50 रुपये
18. श्री अरविन्द सरधना	51 रुपये
19. श्री हरिराम गुप्ता, दिल्ली (मासिक सहयोग)	11,000 रुपये
20. श्री महादेव	101 रुपये
21. श्री पंकज, काकड़ा	100 रुपये
22. श्री हरवीर सिंह आर्य, सिरसली	101 रुपये
23. श्री लोमश त्यागी, मेरठ	500 रुपये
24. श्री ओमपाल सिंह, बरनावा	31 रुपये
25. श्री रामनिवास त्यागी, माछरा	100 रुपये
26. श्री अंकुर, कुतुबपुर	501 रुपये
27. श्री राजेन्द्र प्रसाद त्यागी, रहदरा	250 रुपये
28. श्री रमेश चन्द, रछौली	250 रुपये
29. श्री राजेन्द्र शर्मा, कैथवाड़ी	50 रुपये
30. श्री राजेन्द्र शर्मा, रासना	100 रुपये
31. गुप्तदान, रासना	101 रुपये
32. श्रीमति कमला देशवाल, राजेन्द्र नगर, दिल्ली	500 रुपये

33. श्री अरविन्द कुमार, मोदीपुरम, शिवनगर	501 रुपये
34. श्री धर्मवीर, काकड़ा	51 रुपये
35. श्री राजकुमार त्यागी, मेरठ	101 रुपये
36. श्रीमति राजेश्वरी, फतेहपुर	101 रुपये
37. श्री महेन्द्र सिंह त्यागी	21 रुपये
38. श्री यामीन, बरनावा	50 रुपये
39. श्री शिवकुमार शर्मा, सोहाना	101 रुपये
40. श्री जयप्रकाश जी, पलड़ा	101 रुपये
41. श्री यादराम जी, भामौरी, सरधना	101 रुपये
42. प्रो. हरसरण वत्स, पल्लवपुरम, मेरठ	500 रुपये
43. डा. धर्मवीर बालियान	501 रुपये
44. गुप्तदान	50 रुपये
45. श्री सुखवीर बालियान, रसूलपुर	50 रुपये
46. श्रीमति अंजना, श्री जयप्रकाश जी, दिल्ली	600 रुपये
47. श्री सुभाष त्यागी, गांधी नगर, मेरठ	1000 रुपये
48. श्री अविनाश शर्मा, बरनावा	21 रुपये
49. पं. नितिन भारद्वाज	100 रुपये
50. श्री कपिल शर्मा, मेरठ	100 रुपये
51. श्रीमति शिमला, दिनकरपुर	100 रुपये
52. कु. खुशी, बरनावा	101 रुपये
53. श्रीमति मितलेश, भूनी	101 रुपये
54. श्री मनोज कुमार, मोदीनगर	100 रुपये
55. श्री राजकिशोर मा., मोदीनगर	100 रुपये
56. श्री महेन्द्र कुमार, मोदीनगर	100 रुपये
57. श्रीमति रामकौर, सीकरी खुर्द	100 रुपये
58. श्री कमल, मा. मोदीनगर	100 रुपये
59. श्रीमति मिन्दादेवी, मोदीनगर	100 रुपये
60. श्री संदीप, संचिन, जीवाना	100 रुपये
61. श्री नीरज त्यागी, शगुन त्यागी, नोएडा	100 रुपये
62. श्रीमति सन्नो त्यागी, विजयनगर, गा.	100 रुपये
63. श्रीमति कोशलया देवी, गढ़ी	100 रुपये
64. श्री कुलदीप शर्मा, गुड़गांव	500 रुपये
65. श्री नितिन, सविता	250 रुपये
66. श्री महेन्द्र जी, ननान	21 रुपये
67. श्री धनपत जी, बागपत	101 रुपये
68. श्री सतवीर सिंह	50 रुपये
69. श्री इन्द्रपाल जी	50 रुपये
70. श्री आयुर्णा आर्य, मुरादनगर	100 रुपये

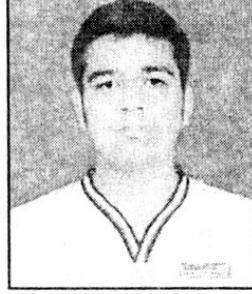
71.	श्री जितेन्द्र सिंह, मालवीय नगर, नई दिल्ली	1100 रुपये
72.	श्री अरिणा, दिल्ली	30 रुपये
73.	श्री ओमपाल, बड़ौत	100 रुपये
74.	श्री फकीर चन्द त्यागी, बड़ौत	200 रुपये
75.	श्री जयकरण जी	100 रुपये
76.	श्री उदयवीर जी, दान्दूपुर	100 रुपये
77.	श्री आर्य समाज, बरला	100 रुपये
78.	श्री प्रणपाल सिंह राणा, मुजफ्फरनगर	251 रुपये
79.	श्री जयवीर सिंह, मुलसम	101 रुपये
80.	श्री भोपाल सिंह, जोहड़ी	25 रुपये
81.	श्री विनोद कुमार त्यागी, रासना	101 रुपये
82.	श्री प्रेम सिंह भदौड़ा	101 रुपये
83.	श्री नरेन्द्र कुमार शर्मा, फरीदाबाद	500 रुपये
84.	श्री आर्य समाज, बरला	100 रुपये
85.	श्री ईश्वर सिंह, कजमपुर	50 रुपये
86.	श्री रामपाल चौधरी, सलेमाबाद, मुरादनगर	100 रुपये
87.	श्री दिनेश पण्डित जी, सलेमाबाद	100 रुपये
88.	श्री हिमान्शु त्यागी, बरनावा	50 रुपये
89.	श्री डी. वेदपाल, सिरसली	500 रुपये
90.	श्री सुरेन्द्र सिंह, मकनपुर	500 रुपये
91.	श्री विनोद त्यागी, मकनपुर	1100 रुपये
92.	श्री रतन सिंह, मकनपुर	101 रुपये
93.	श्री जे.पी. त्यागी, मकनपुर	500 रुपये
94.	श्री राजेन्द्र मास्टर जी	1100 रुपये
95.	श्री आर.के. गोयल, राजस्थली अपार्टमेंट, दिल्ली	500 रुपये
96.	श्रीमती सोमवती भामौरी,	51 रुपये
97.	श्री यशवीर सुपुत्र श्री मूलचन्द	1100 रुपये
98.	श्री कैप्टन लोमश सिरौही, हापुड	500 रुपये
98.	श्री धर्मेन्द्र, कहरपुरा	200 रुपये
99.	श्री वेदपाल आर्या, खरखोदा, मेरठ	200 रुपये
100.	श्री योगेन्द्र सिंह, बुलन्दशहर	500 रुपये
101.	श्री नाहर सिंह, इख्तीयारपुर	101 रुपये
102.	श्री राकेश	251 रुपये
103.	श्री वेदभरी देवी, कारनावाल	501 रुपये
104.	श्री गमदूर सिंह रूप राय, फफुन्डा	151 रुपये
105.	श्री अमित, मनडोरी, सोनीपत	101 रुपये
106.	श्री मास्टर शिवराज त्यागी	150 रुपये

107.	श्री प्रदीप गोस्वामी, सकोती	100 रुपये
108.	श्रीमती आस्था, सहारनपुर	51 रुपये
109.	श्री चन्द्र भूषण पान्डे, इलाहाबाद	500 रुपये
110.	श्री ब्रह्म सिंह, दाहा	101 रुपये
111.	मास्टर ब्रिजपाल, दाहा	101 रुपये
112.	श्री हरीश चन्द, खुशावली, मेरठ	50 रुपये
113.	श्री जगपाल सिंह, सरधना	101 रुपये
114.	श्री कृष्णा त्यागी, रासना	101 रुपये
115.	श्री हरि शंकर भारद्वाज, मोदी नगर, गाजियाबाद	100 रुपये
116.	श्री सोनू कुमार, बरनावा	50 रुपये
117.	श्री सुशील कुमार, मांडी, मुजफ्फरनगर	100 रुपये
118.	श्री धर्मवीर सिंह, रसूलपुर	50 रुपये
119.	श्री रोहताश आर्य, आर्य समाज निधावाली	51 रुपये
120.	श्री जितेन्द्र तोमर	1100 रुपये
121.	श्री घलोली	50 रुपये
122.	श्री जौन सिंह, कैथवाड़ी	21 रुपये
123.	श्री उज्ज्वल, कक्केपुर	101 रुपये
124.	श्री करमवीर सिंह, दान्दूपुर	101 रुपये
125.	श्री वरिन्दर, कैथ	51 रुपये
126.	श्री आदेश, बरनावा	51 रुपये
127.	श्री जगतसिंह राणा, दाहा	55 रुपये
128.	श्री लोकेन्द्र, दाहा	50 रुपये
129.	श्री रेतुके, माहदौ	100 रुपये
130.	श्री नरेन्द्र कुमार, मोदी नगर	101 रुपये
131.	डा. दीपक, मोदी नगर	100 रुपये
132.	श्री कमल सिंह, मोदी नगर	101 रुपये
133.	श्री सयानन्द, श्रीमती उषा, बरखन्डा	1011 रुपये
134.	श्री गुड्डू, कमाला	50 रुपये
135.	श्री सत्यप्रकाश त्यागी, मकनपुर	500 रुपये
136.	श्री एस.आर. साम्बी, चडीगढ़	200 रुपये
137.	श्री सीताराम, एलम	100 रुपये
138.	श्री प्राण कैथवाड़ी	50 रुपये
139.	गुप्तदान	202 रुपये
140.	श्रीमति राजेन्दी जी, रासना	50 रुपये
141.	श्री प्रीतम सिंह, बिलासपुर	51 रुपये
142.	श्री सुरेन्द्र जी, रासना	100 रुपये
143.	श्री राजेश्वर त्यागी, पिलाना	100 रुपये
144.	श्री सुरेन्द्र कुमार, खेतरी तगान	100 रुपये

॥ ओ३म् ॥

जन्मदिन की शुभकामनाएँ

श्रीमति पूनम त्यागी व श्री संजीव त्यागी जी निवास स्थान बल्लभगढ़, हरियाणा ने अपने सुपुत्र चिरंजीव वैदिक कुमार के 18 मई को शुभ जन्मदिन के उपलक्ष्य में 5100 रु. का सात्त्विक दान प्रकाशन के कार्य के लिए प्रदान किया है। श्री त्यागी जी समिति के कार्यों में निरंतर तन-मन-धन से काफी लम्बे समय से सहयोग करते आ रहे हैं और इस सब के साथ साथ मासिक 500 रु. का सहयोग भी शुरू से उदारता के साथ प्रदान कर रहे हैं। अर्थात् पूज्यपाद गुरुदेव के सभी कार्यों को ऊर्ध्वगति प्रदान करने में अपना योगदान बड़ी कर्मठता से बनाये हुए हैं।



वैदिक कुमार

श्री संजीव त्यागी जी मूल रूप में ग्राम दिनकरपुर, जिला-मुजफ्फरपुर के निवासी हैं और पूज्यपाद गुरुदेव से जुड़ने का सौभाग्य बचपन से ही प्राप्त हो गया था क्योंकि इनके माता-पिता स्व. श्रीमती विशम्बरी देवी व श्री बेगराज त्यागी जी गुरुदेव के अनन्य भक्त थे। माता-पिता की छत्रछाया में और पूज्यपाद गुरुदेव के आशीर्वाद से त्यागी जी अपनी शिक्षा के साथ-साथ अपने जीवन को यौगिक क्षेत्र में भी उन्नति की तरफ ले जाते रहे। आजकल आप फरीदाबाद में कार्यरत हैं और इसके साथ-साथ पूज्यपाद गुरुदेव के अमूल्य साहित्य का अध्ययन करते हुए उस साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने में संलग्न रहते हुए अपने व अपने परिवार के जीवन को ऊर्ध्वगति में ले जाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं। सुपुत्र इस वर्ष 12वीं कक्षा की परीक्षा के लिए बहुत ही तन मन से संलग्न है, ईश्वर इसमें उसको उत्तम स्थान प्राप्त कराये ऐसी विनती करते हैं।

समिति उनके निरन्तर सहयोगों के लिए उनका व उनके परिवार का हृदय से आभार प्रकट करती है और ईश्वर से उनको परिवार सहित सुख, शान्ति व सर्वतोन्मुखी की प्रार्थना करती है।

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

॥ ओ३म् ॥

स्मृति

पूज्यपाद गुरुदेव के अनन्य भक्त विनम्रता की प्रति मूर्ति रघुवीर सिंह जी (प्रधान) ग्राम कसेरवां खुर्द, जनपद शामली (उ.प्र.) का 28 दिसम्बर, 2013 पूर्णिमा के दिवस देहावसान हो गया। आपने पूज्यपाद गुरुदेव के सानिध्य में रहकर अपने गृह पर चारों वेदों के पारायण यज्ञ कराये। उनका जीवन यज्ञों के प्रति समर्पित था। दैनिक यज्ञ उनके जीवन में समाहित था। उनकी धार्मिकता का यह प्रमाण है कि अपने सुपुत्र श्री योगाचार्य अरविन्द शास्त्री जी को पूज्यपाद गुरुदेव के ज्ञान से प्रभावित होकर उन्हीं के द्वारा स्थापित श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय बरनावा में प्रवेश कराया।



चौ. रघुवीर सिंह

आज आदरणीय शास्त्री जी उच्च शिक्षा प्राप्त कर गुरुकुल में अध्यापन कार्य के साथ-साथ देश के कोने-कोने में वेद पारायण यज्ञ एवं चतुर्वेद पारायण यज्ञों का कल्याण के लिए प्रचार प्रसार कर रहे हैं ये उनके पूज्य बाबा जी के ही सुसंस्कारों का प्रभाव है। पूज्य प्रधान जी की नम्रता का प्रमाण-कि वे अपने से छोटी आयु वालों को झुककर प्रणाम करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे। अपनी निस्वार्थ भाव व ईमानदारी के कारण वो अपने गांव के लगभग सत्रह वर्षों तक निर्विरोध प्रधान चुने गये। उनके जीवन काल की यह विशेषता रही कि पूर्णिमा के दिन ही उनका जन्म हुआ था। शारीरिक एवं बौद्धिक रूप से स्वस्थ रहते हुए, अपने जीवन के 96 वर्ष पूरे करते हुए पूर्णिमा के दिवस ही इस नश्वर शरीर को त्यागकर प्रभु की शरण में चले गये।

पूज्य प्रधान जी की स्मृति में परिवार वालों ने पूज्यपाद गुरुदेव के प्रकाशन कार्य के लिए 1100 रुपये का सात्त्विक सहयोग प्रदान किया है जिसके लिए समिति बारम्बार धन्यवाद करती है और दिवंगत आत्मा की शान्ति की प्रार्थना करती है। परमपिता परमात्मा से यह भी विनय करती है कि इस शोक संतप्त परिवार को दुख सहन करने की शक्ति प्रदान करें।

श्री गाँधीधाम समिति (पंजी.)

वैदिक अनुसन्धान समिति (पंजी.)

वर्ष 41 : अंक : 488
मई 2013

मूल्य:
पाँच रुपये

प्रकाशक, मुद्रक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश (प्रकाशन मंत्री वै.अ.स.) द्वारा वैदिक
अनुसंधान समिति पंजी०
के लिए नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस, दिल्ली से छपवाकर सी-38,
शिवालिक मालवीय नगर, नई दिल्ली-17 से प्रकाशित।
(अवै०) सम्पादक : डा० मधुसूदनेश्वर प्रकाश, दूरभाष : 26498737

POSTED AT N.D.PS.O ON 10/11-05-2013
Published on 5th day of the same month